मानसिक स्वराज : हिन्द स्वराज के सौ साल बाद

शैल मायाराम

शैल मायाराम विकासशील समाज अध्ययन केन्द्र (CSDS) नयी दिल्ली में निदेशक हैं। राज्य एवं सम्प्रभुता के निम्नवर्गीय दृष्टिकोण पर इनका काम खासा सराहा गया। इन्होंने अंतर्राष्ट्रीय धार्मिक आंदोलनों, रूपांतरण, सभ्य समाज में हिंसा के नये तरीकों के बारे में काफी लिखा है।

बीसवीं सदी की शायद सबसे अहम किताब हिन्द स्वराज है। आज की तारीख में हम कह सकते हैं कि इसका महत्व मार्क्स की कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो से भी ज्यादा रहा है। कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो ने 'दूसरे विश्व' को जन्म दिया, कुछ चार दशक के लिए। हिन्द स्वराज से दुनिया भर के उपनिवेशवाद और रंगभेद विरोधी, लोकतंत्र समर्थक, नारीवादी, पर्यावरणवादी आंदोलनों को प्रेरणा मिली। हिन्द स्वराज पहली किताब थी जिसने स्वराज और उसकी विपरीत स्थिति, कुराज, का विश्लेषण किया। वह 1909 में छपी, उसके दस साल बाद के.सी. भट्टाचार्य ने अपना वक्तव्य 'स्वराज इन आइडियाज' कलकत्ते में दिया। के.सी. भट्टाचार्य कलकत्ते के हुगली कालेज के प्राध्यापक थे जिनको बीसवीं सदी के भारत का सर्वोत्तम दार्शनिक माना गया है। उनका आलेख कालांतर में विश्वभारती क्वार्टली (1960) में छपा।

के.सी. भट्टाचार्य, श्री अरविन्द और स्वामी विवेकानंद की तरह, आध्यात्मिक तो नहीं थे, लेकिन उनको *स्वराज के बालक* कहा जा सकता है। वह उस पीढ़ी के कुछ उन लोगों में थे जो कि गांधी के सत्याग्रहों जैसे चम्पारण, बारदोली इत्यादि में पनपे और जो स्वराज के मुद्दे को लेकर बेहद चिन्तित रहे। अचम्भे की बात है कि के.सी. भट्टाचार्य के लेख पर कुछ विशेष चर्चा नहीं हुई, न विश्व में, न हिन्दुस्तान में, न 1947 के पहले, न आजादी के तीन दशकों तक। वर्ष 1984 में कुछ दार्शनिकों ने दुबारा बीड़ा उठाया और कई बुद्धिजीवियों के लेख *इंडियन फिलोसोफिकल क्वार्टरली* (पुणे) के 'स्व. राज इन आइडियाज' विशेषांक में छपे। सभी लेखकों ने के.सी. भट्टाचार्य के लेख पर अपनी टिप्पणी, आलोचना, विश्लेषण प्रस्तुत किये। दयाकृष्ण, रजनी कोठारी, ए.के. सरन, जे.पी. एस. ओबराय, आशीष

नंदी आदि ने अपने मत प्रस्तुत किये। सम्पादकों की अपनी सामूहिक टिप्पणी छपी। रामचंद्र गांधी ने अपना व्यक्तिगत मत भी रखा। के.सी. भट्टाचार्य का आरम्भिक लेख, हिन्द स्वराज की तरह संक्षिप्त था (लेख की दृष्टि से) केवल 26 अनुच्छेदों में। उसका विस्तार, गांधी जी की पुस्तक के मुकाबले में तो नहीं था, जैसाकि ए.के. सरन ने अपने *इंडियन फिलोसोफिकल क्वार्टरली* के लेख में लिखा। लेकिन के.सी. भट्टाचार्य का लेख गांधी जी की सोच की धारा को ही आगे बढ़ाता है, बुद्धि और विवेक के संसार को लेकर उसका विस्तार करता है।

इंडियन फिलोसोफिकल क्वार्टरली के विशेषांक के बाद मुद्दा और चर्चा जैसे फिर ठंडा हो गया। आज की तारीख में केवल एक पत्रिका जयपुर से निकलती है, जिसको दो विचारक, डॉ. यशदेव शल्य और डॉ. मुकुंद लाठ सम्पादित करते हैं। उसका शीर्षक है *उन्मीलन* और उसकी विषयवस्तु और उद्देश्य मानसिक स्वराज है। मानसिक स्वराज का सवाल भाषा से जोड़ा जाता है, विचार से भी। 'इतिहास क्या है' और 'काव्य क्या है' जैसे लेख उन्मीलन में मिलते हैं। लेकिन क्योंकि लेखन हिन्दी में है, अंग्रेजी में चिन्तन करने वाले बौद्धिक जगत में इसके बारे में कोई चर्चा नहीं है।

बौद्धिक आजादी की बात विश्व में अन्य स्थानों में भी उठायी जा रही है। मैं 2002 में जब बेरूत (लेबनान) में फील्डवर्क कर रही थी, तब मानवशास्त्री तलाल असद के नेतृत्व में अमेरिका की सोशल साइंस रिसर्च कौन्सिल (एसएसआरसी) ने एक सत्र आयोजित किया जिसका विषय था, *'टुवर्डस एन अरब लेक्सिकान इन द ट्वेण्टीफर्स्ट सैन्चरी'।* यह था एसएसआरसी की *कॉन्फ्रेस आन पब्लिक स्फेयर्स* के दौरान। शिकागो जैसे विश्वविद्यालयों में हाल में 1700-1950 के बीच साम्राज्य, आधुनिकता और सामाजिक शास्त्र पर चर्चा हुई है। सेण्टर फॉर द स्टडी ऑफ सोशल साइंसिस, कलकत्ता ने 2004 में *वरनाकुलर हिस्ट्री* पर एक गोष्ठी आयोजित की। विकासशील समाज अध्ययन केन्द्र (सीएसडीएस, दिल्ली) में भारतीय बौद्धिक परम्पराओं को लेकर कुछ आरम्भिक अध्ययन हुआ है और महाभारत पर आईआईएएस (शिमला) के साथ एक दो सालाना अध्ययन का कार्यक्रम शुरू हुआ है।

के.सी. भट्टाचार्य के लेख में कई सवाल अछूते रह जाते हैं, किन्तु यह लेख हमारी आधुनिकता की बौद्धिक पीड़ा को दर्शाता है। उनके सवाल आज भी अहम हैं, भले उनके पास जवाब नहीं हों। ग्लोबलाइजेशन के पश्चात संकट और भी गहराया है। हमारे युग में ज्ञान की जगह सूचना ने ले ली है, इससे और बड़ी त्रासदी भला क्या हो सकती हैं?

सम्पादकगण के.जे. शाह, रामचंद्र गांधी, प्रबोल दासगुप्त और एस. एस. देशपांडे 1984 को (जॉर्ज ओरवेल) प्रधान वर्ष मानते हैं, जिसमें हिन्दुस्तान और विश्व भर में उथल पुथल और हिंसा रही। सम्पादकीय में रामचंद्र गांधी की स्पष्ट छाप दिखती है– *"'Mourn' and `lament' are inadequate words, but we deeply mourn the death of Shrimati Indira Gandhi, struck down by separatism not svaraj, and we deeply lament the black aftermath of that black deed. We shall overcome, Hinduism and Sikhism shall overcome. India shall overcome costly ungrateful forgetfulness of svaraj. Satyameva Jayate".*

सम्पादकीय महात्मा और दार्शनिक को आमने सामने खड़ा करता है, गांधी जी और के.सी. भट्टाचार्य को। एक का क्रांतिकारी लेखन और दूसरे की दार्शनिक जिज्ञासा स्वराज के मुद्दे से प्रेरित। मानसिक स्वराज की बात प्रमुखता से की जाती है, साथ ही स्वीकार किया जाता है कि हिन्द स्वराज के गौण होने से वैचारिक स्वराज और स्वायत्तता की कमी रही। और जैसाकि के.सी. भट्टाचार्य मानते हैं राजनीतिक स्वतंत्रता के इतने दशक बाद भी दासता का कारण बनी।

के.सी. भट्टाचार्य भारतीय बुद्धिजीवियों की परछाईयुक्त बुद्धि की अधीनता की चर्चा करते हैं। कुछ कुछ गांधी जी की ही तरह वह भेद करते हैं राजनीतिक स्वराज और उस दास्तां में जो आत्मा में प्रवेश करती है। जहां एक संस्कृति दूसरी संस्कृति पर एक सूक्ष्म प्रभुत्व स्थापित करती है और जहां दासता और सांस्कृतिक ('शैडो माइंड') (सबजैक्शन) न केवल दिखता है, बल्कि उसको अच्छा माना

जाता है। के.सी. भट्टाचार्य का इशारा है 'वरनाकुलर माइंड' की तरफ जो कि पाश्चात्य शिक्षा की 'गैलवेनाइजड माइंड' से दब गयी है।

सैकुलरवादी विचारकों ने के.सी. भट्टाचार्य की बात में नेटीविजम की बू पायी और उनका लेख एक 'अछूत' और किसी दृष्टि से नौन पॉलिटिकली करैक्ट बन कर रह गया। चूंकि के.सी. भट्टाचार्य ब्राह्मण घर में पैदा हुए थे, उनकी बात ब्राह्मणवादी बात बन कर रह गयी। गौर फरमाने वाली बात है कि के.सी. भ्टटाचार्य स्वदेशी पर बल नहीं देते और विदेशी विचार को नकारने की बात भी नहीं कहते हैं। उनकी चिन्ता थी 'वरनाकुलर माइंड' के लिए जो कि पश्चिमी शिक्षा से दब गयी है, उसको कैसे पुनः स्थापित किया जाय। उनका कहना है कि विवेकवाद केवल पश्चिम तक सीमित नहीं है ।

सुधीर चंद्र की पुस्तक, *द ओपरैसिव प्रेसेण्ट* ने एक अहम सवाल उठाया है कि ये 'वरनाकुलर माइंड' है क्या? हालांकि वह स्वयं एक 'वरनाकुलर माइंड' का चित्र प्रस्तुत करते हैं जो कि उपनिवेशवाद के दौर में भारी रूप से प्रभावित है। उनका कहना है कि 'प्रगतिशील' बुद्धिजीवियों ने भी पश्चिमी खयालात के परे अपनी परम्परा समझने का प्रयत्न नहीं किया है। सुधीर का कहना है कि पार्थ चैटर्जी का राष्ट्रवादी चिन्तनपरक शोध 'डेरीवेटिव डिसकोर्स' के प्रश्नचिह्न को व्यर्थ बना देता है। उनकी पुस्तक *नैशनलिस्ट थाट एंड दी कोलोनियल वर्ल्ड* इंडियन में फिलोसोफिकल क्वार्टरली में हुई *'स्वराज इन आइडियाज'* पर चर्चा का कोई स्थान नहीं है। ये वैचारिक एक्सक्लूसिविजम, 'गैर प्रगतिशील' की एक्सक्लूसिविजम का प्रतिबिम्ब है।

के.सी. भट्टाचार्य का तर्क स्वदेशी ज्ञान के औचित्य को नहीं दर्शाता, हालांकि कई विचारक उनकी इस बात को ठीक से नहीं समझ पाये हैं। इस कथन की आलोचना उनके अपने दर्शन में मिलती है। के.सी. भट्टाचार्य की थ्योरी ऑफ अलटरनेटिव एबसोल्यूट्स, जो उनकी खास दार्शनिक उपलब्धि रही, सांख्य दर्शन और वेदांत को, कांटवादी (Kantian) और हेगलवादी (Heglian) प्रभाव से जोड़ती है, विशेष तौर से हेगल के एबसोल्यूट के विचार से।

के.सी. भट्टाचार्य के लेख की *इंडियन फिलोसोफिकल क्वार्टरली* (IPQ) के लेखकों ने खास आलोचना की। ए.के. सरन (IPQ, 519.22) सम्पादकों की बात पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं कि के.सी. भट्टाचार्य का लेख हिन्द स्वराज का मुकाबला कर सकता हैं। सरन का कहना है कि हिन्द स्वराज एक क्रांतिकारी पुस्तक थी, वास्तविक रूप में मार्क्स की कम्युनिस्ट मैनीफैस्टो से अधिक क्रांतिकारी। *'स्वराज इन आइडियाज'* उत्तम लेख है, लेकिन उसमें आधारभूत कमी है। मेरे अपने विचार में 'स्वराज इन आडियाज' की तुलना हिन्द स्वराज से तो नहीं की जा सकती है। राजनैतिक स्वराज मानसिक स्वराज का आधार होना चाहिए, न केवल भारत में बल्कि विश्वभर में। यह लेख राजनैतिक स्वराज की अपूर्णता को दिखाता है जिसमें उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ाई न केवल परम्परा के जालों से लड़नी है, बल्कि आधुनिकता से भी जो आत्मा का नाश करती है।

के.सी. भट्टाचार्य के लेख का तर्क अपर्याप्त और अपूर्ण है। जैसाकि जी.पी.एस. ओबराय कहते हैं *'स्वराज इन आडियाज'* यूरोप के ज्ञान सम्बंधी master classification पर प्रश्नचिह्न नहीं उठाता, जिसके जरिए कलाओं और विज्ञान का भेद पनपा और जिसने विज्ञान, धर्म और राजनीति के तीन क्षेत्रों में ज्ञान, विश्वास और कर्म को विभाजित किया। *'स्वराज इन आइडियाज'* आधुनिक यूरोपीय संस्कृति के ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति और fact/value (तथ्य/मूल्य) तथा theory/practice (सिद्धांत/अभ्यास) के intersecting dualisms (सम्बंधित द्वैतवादों) को चुनौती नहीं देता। उल्लेखनीय है कि यह ओबराय का स्वयं का बौद्धिक योगदान है। किन्तु मेरा ओबराय के प्रति सवाल है, कि के.सी. भट्टाचार्य यूरोप की ज्ञान की पद्धति पर सवाल नहीं लगाते क्या? ओबराय का कथन है कि के.सी. भट्टाचार्य प्रकृति सम्बंधी विचार को पश्चिम को प्रदान करते हैं और मनुष्य कार्य सम्बंधी विचार को भारत के लिए बचाते है। ओबराय को इसमें प्रत्यक्षवादी विचारधारा नजर आती है, इसी कारण से

उनका कहना है कि के.सी. भट्टाचार्य का तर्क आधुनिकतावादी और fundamentalist दोनों को पसंद आता है, जबकि गांधी जी अपनी पद्धति में उन दोनों के विरुद्ध थे। मेरे मत में जे.पी.एस. ओबराय का आह्वान एक सम्पूर्ण वैचारिक स्वराज के लिए है, के.सी. भट्टाचार्य की कल्पना से और भी व्यापक। ओबराय लिखते हैं, *"Svaraj, or the freedom and the sovereignty of self-rule and self-reform, will be achieved through a simultaneous reexamination of the foundations of science, art or culture, and politics, their divisions and interrelations with philosophy, or it will not be achieved at all in the world of thought"* (IPQ, 525).

ओबराय का अपना शोध कार्य मेरी दृष्टि में एक स्वराजवादी कार्यक्रम है। उनकी जिज्ञासा यूरोप में कुराज के कारण, उनका विश्लेषण यूरोप की ऐसी धारा का है जोकि गौण और दबी हुई रह गयी, किन्तु जो हारी नहीं और जिसमें शायद वैकल्पिक आधुनिकता नजर आती है।

वैचारिक स्वराज विवेक की एक अन्य यात्रा दर्शाता है जोकि पश्चिम में प्रधान नहीं बन पायी और जो यूनान, चीन, अरब और हिन्द की बौद्धिक यात्राओं में हमें देखने को मिलती है। यहां के आदिवासी लोगों की भी संस्कृतियां हैं जो एक व्यापक दुनिया के सम्पर्क में रहीं, लेकिन जिनके विचार, विश्वास और कर्म की अपनी परम्पराएं रहीं, जैसाकि सुजाता और मृणाल मिरी अपने IPQ के लेख में कहते हैं। तो हम स्वराज का और निकट विश्लेषण करें। *हिन्द स्वराज* में और '*स्वराज इन आइडियाज*' में मोहनदास करमचंद गांधी स्वराज का उपयोग करते हैं होमरूल या स्वशासन और स्वविकास के अर्थ में। स्व ही राज्य का विशेष केन्द्रबिन्दु है। भारत का और विश्व का भविष्य, जिसमें गैर मानवीय जीवन भी जुड़ा हुआ है, इस पर आधारित हैं।

मृणाल मिरी ने गांधी के ऊपर अपने हाल के लेख में अध्यात्म के दो तरीकों का भिन्न तरह से स्पष्टीकरण किया है। एक तरीका है दुनिया से दूरी का और दूसरे तरीके में स्वपरिवर्तन और दुनिया एक नैतिक कड़ी में जुड़े जाते हैं, और गांधी स्वयं इसके उदाहरण हैं।

के. राघवेन्द्र राव का कहना है कि के.सी. भट्टाचार्य अपने लेख के प्रथम हिस्से में राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व की बात करते हैं। राजनैतिक प्रधानता को नकारना और उसका विरोध करना ज्यादा आसान है सांस्कृतिक प्रभुत्व के खिलाफ लड़ाई लड़ने के मुकाबले। के.सी. भट्टाचार्य पश्चिमी शिक्षा के बारे में सवाल उठाते हैं कि किस हद तक वह हमारे अंतःकरण में बस गयी है।

के.सी. भट्टाचार्य मानते हैं कि पश्चिमी संस्कृति केवल थोपी नहीं गयी है क्योंकि हमने ही इस शिक्षा की मांग की है। वे लिखते हैं, *"हमारा मत है, और शायद सही भी, कि यह शिक्षा धन्य है कुछ मायनों में।" "किन्तु शिक्षित भारतीय की बुद्धि एक तरह से लुप्त हो गयी है। गृहस्थ के कार्यों में और सामाजिक धार्मिक क्रियाओं में फिर भी कायम है, जिनका उनके लिए कोई खास मायने नहीं है। नयी शिक्षा के द्वारा आये विचार का वह न स्वागत न विरोध करते हैं। सांस्कृतिक क्षेत्र में उनका कोई अस्तित्व नहीं है।"*

'इस आत्मा की दास्तां को जब व्यक्ति त्याग दे तो वह एक पुनर्जन्म महसूस करता है, और मैं इसको वैचारिक स्वराज कहता हूं' के.सी. भट्टाचार्य लिखते हैं। पश्चिमी विचारों से एक शताब्दी का सम्पर्क रहा है और अपेक्षा की जाती है कि एक भारतीय योगदान होगा आधुनिक विश्व की संस्कृति और चिन्तन में, विशेष तौर से इतिहास, दर्शन और साहित्य में। किन्तु कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के अलावा ऐसा कोई रचनात्मक कार्य नहीं दिखता। दर्शन और साहित्य पर भारतीय दर्शन की दृष्टि से कोई टिप्पणी नहीं हुई है।

मोहनदास करमचंद गांधी और के.सी. भट्टाचार्य के लिए उपनिवेशवाद स्वयं पर केन्द्रित है। गांधी का मशहूर कथन, *'आप शेर को नहीं शेर की प्रकृति पसंद करते हैं, कहने का मतलब आप भारत को अंग्रेजी छाप में ढालना चाहते हैं। यह मुझे जो स्वराज चाहिए, वो नहीं है'* (हिन्द स्वराज, 38)। के.

सी. भट्टाचार्य लिखते हैं, *"सामाजिक सुधार के क्षेत्र में हमने कभी सवाल न उठाया कि क्या पश्चिम के सामाजिक सिद्वांत सार्वभौमिक हैं।"* वे मानते हैं कि, हमारी शिक्षा एक विचारों की खिचड़ी के लिए जिम्मेदार है जिसमें हमारे शिक्षित लोगों की भाषा क्षेत्रीय और अंग्रेजी का मिश्रण है। भाषा की परेशानी का हल मानसिक स्वराज की तरफ एक बड़ा कदम होगा। के.सी. भट्टाचार्य मानते हैं कि चिन्तन और विवेक सार्वभौमिक हैं, लेकिन विचार अलग संस्कृतियों में अलग तौर से ढाले जाते हैं। एक सांस्कृतिक भाषा के विचार को स्पष्ट रूप से दूसरी सांस्कृतिक भाषा में अनुवादित नहीं किया जा सकता।

पूर्व और पश्चिम के आदर्शों का मेल जरूरी नहीं है और के.सी. भट्टाचार्य सार्वभौमिकता को मानते हैं। मनुष्य की प्रगति एक सामान्यीकरण और आदर्शों के एकत्रीकरण की ओर अग्रसर है। किन्तु दो तरह का विवेकवाद है, एक जो परम्परागत संस्थाओं को मान्य रखता है, और दूसरा जो उनको नकारात्मक दृष्टि से देखता है।

राष्ट्रीय अहम के खतरे को के.सी. भट्टाचार्य स्वीकार करते हैं, खासतौर पर यह मानना कि हमारी संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है और दूसरी संस्कृतियां निम्न स्तर की हैं। किन्तु भारतीय जड़हीन सार्वभौमिकता से ज्यादा प्रभावित हैं, न कि चिपकाऊ क्षेत्रवाद से। वे गणित और प्राकृतिक विज्ञानों को इससे अछूता मानते हैं और इसके बारे में कई लोगों ने IPQ में प्रश्न उठाये हैं। सुनील सहस्रबुद्धे कहते हैं कि के.सी. भट्टाचार्य विदेशी विचारों की सार्वभौमिकता पर प्रश्न उठाते हैं लेकिन गणित और प्राकृतिक विज्ञानों को मानते हैं। वे धर्मपाल के शोध की ओर इशारा करते हैं जो दर्शाता है कि 18वीं सदी का भारतीय विज्ञान और तकनीकी पश्चिम से फरक और कहीं ज्यादा अग्रसर थे। People Oriented Science and Technology (PPST) समूह ने कृषि, जंगलात और वास्तुशास्त्र में भारतीय ज्ञान उजागर किया और दिखाया कि पश्चिमी ज्ञान ने अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा में अपने को सार्वभौमिक माना। सी.वी. शेषाद्रि आधुनिक विज्ञान और शक्ति के वैकल्पिक विचार को आमने सामने करते हैं।

IPQ के 1984 के विशेषांक में मानसिक स्वराज को लेकर कई तरह की प्रतिक्रियाएं उठी हैं। दयाकृष्ण का कहना है कि के.सी. भट्टाचार्य के कथन में सत्य है लेकिन समस्या यह है कि परम्प. रागत शोधकर्त्ताओं ने उतनी ही कम रचनात्मकता दिखायी है जितनी की पश्चिमी बौद्धिक परम्परा में प्रशिक्षित लोगों ने। वे सवाल उठाते हैं सांस्कृतिक बौद्धिक एकमत्ता (monadism) की, जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण है, कि ज्ञान सभ्यता और राष्ट्रीय सीमाओं को पार करे। वे पूछते हैं ऐसा क्यों कि जन्म निर्धारित करे कि हम किस परम्परा से जुड़ते हैं। के.सी. भट्टाचार्य का लेख भारतीय दार्शनिकों में सबसे रचनात्मक व्यक्तियों की पीड़ा को दर्शाता है। लेकिन उनका दर्शन ही ऐसी पद्धति उजागर करता है कि हम कैसे भारतीय और पश्चिमी परम्पराओं से शुरुआत करें, साथ ही उनसे आलोचनात्मक दूरी बनाये रखें।

मानसिक स्वराज के कुछ अभ्यास

इस भाग में हम तीन विचारकों का जिक्र करते हैं। तीनों अद्वैतवाद (non-dualism) के दार्शनिक सिद्धांत के प्रति आकर्षित हैं। जेपीएस ओबराय बात करते हैं स्वराज बनाम स्वदेशी की। हमारे मान. सिक स्वराज की खोज कहीं स्वदेशी में न बदल जाय और दूसरे स्थानों के विचारों से हम सीख न पायें। अपनी पुस्तक, *The other mind of Europe: Goethe as a scientist* (1984) में वे लिखते हैं कि हिन्दुस्तानियों को अधिकार है न केवल यूरोप को प्रदेशी (provincialize) करने का, बल्कि उसकी आधुनिकता की आलोचना करने का, जिसमें उसका विज्ञान का जीवन भी शामिल है। ओबराय यूरोप की दूसरी परम्परा की ओर इशारा करते हैं, गोथे को वैज्ञानिक के रूप में पुनः स्थापित करते हुए जिनको केवल कवि का दर्जा ही दिया गया था।

यूरोप का ईसाई धर्म सिद्धांत (theology) और उसका दबा, लुप्त इतिहास Cartesian anti-metaphysical सिद्धांत की आलोचना करता है। गोथे की occult में रुचि उनके Faust में स्पष्ट है। अपने रंगों के सिद्धांत के जरिए अपना सम्बंध जोड़ते हैं यूरोपी cosmology के द्वारा प्लेटो के Timaeus से, अरस्तू और द विन्ची से भी। गोथे चर्च की मध्यकालीन परम्परा से जुड़े थे जो उनकी कला और शिल्प की rainbow treatise में स्पष्ट है। ये ईसाई परम्परा तो थी ही लेकिन एक नव प्लेटोवादी परम्परा भी थी और बुखारा के इब्न सिना (आविसेना 980-1037) और रौजर बेकन (1214.94) के संवाद का संकेत देती है। Order of the Knights Templar क्रांतिकारी ईसाई धर्म और क्रांतिकारी Reformation से सम्बन्धित है। Roman Catholic Inquisition और Magisterial (प्रभुत्वशाली) Reformation का प्रोटेस्टेण्ट ने खंडन किया। गोथे जीवन को रंग से जोड़ते हैं जिसका जोर रोशनी, सूर्य और इंद्रधनुष पर है। Eucharist और औषधि में आपसी सम्बंध हैं जैसाकि Parcelsus के occult दर्शन में उपलब्ध है spirit की रोशनी और प्रकृति की रोशनी का यहां मेल है। यीशू का कहना है 'मैं दुनिया की रोशनी हूं।' किन्तु सत्रहवीं सदी के मध्य से मशीनी या भौतिकी व्यवस्था की प्रधानता स्थापित हुई जब देकार्त ने signs/ things और प्रकाश/गुरुत्व (light/gravity) को विभाजित किया साथ साथ subject/object और सत्य/यथार्थ को भी। न्यूटन का monopolistic सत्य का सिद्धांत और Gravity का सर्वभौमिक कानून, नयी ईसाइयत के positivist (प्रत्यक्षवादी) धर्म से जुड़ गया।

जे.पी.एस. ओबराय ईसाई धर्म के गुप्त इतिहास (Gnosticism) की ओर इशारा करते हैं जिसको डेन ब्राउन केवल मात्र sensationalize करते हैं। मैंने जब Delhi School of Economics के MPhil कार्यक्रम में दाखिला लिया जे.पी.एस. की मौजूदगी हर रोज सुबह कैफे में होती। विद्यार्थियों से बातचीत के लिए वे उपलब्ध थे– एक विचारों के roller coster पर बिठा घुमाते। कभी लगता कि इस विस्तृत संसार में सिर पैर नहीं है, कहीं शुरुआत, कहीं दूसरा घुमाव, अंत– उनकी बात समझ में आती। जे.पी.एस. का ईसाई, सिख धर्म और इस्लाम पर कार्य रहा है। इस्लामी सार्वभौम को समझने के लिए वे 'अजलफ' और 'अजम' categories का प्रयोग करते हैं।

रामचंद्र गांधी की मैंने चर्चा दूसरे लेख में की है। वे स्वराज को स्व ज्ञान से जोड़ते हैं। यह तर्क वे I am Thou (1984) में प्रस्तुत करते हैं, जो मेरी दृष्टि में बीसवीं सदी का एक उपनिषद है, हालांकि हिन्दुस्तान के दर्शन विभाग अधिकतर उसको स्वीकार नहीं करते। किन्तु इसमें चर्चा गांधी और रमण महर्षि से लेकर आदिवासी आस्था तक है। Sita's kitchen (1994) और स्वराज (2002) की चेष्टा है। गांधी और तिरुवन्ममलाई के संत के बीच सम्वाद स्थापित करना और स्वराज की ecological दृष्टि प्रस्तुत करना जिसमें आसमान सत्य धारण किये है– 'मैं हूं' का और धरती का। रामचंद्र गांधी के अर्थ में गांधी जी के प्रिय शब्द सन्मति का अर्थ है सर्वसम्मिलित (inclusive wisdom)।

रामचंद्र गांधी ट्रस्टीशिप के विचार का विश्लेषण करते हैं– *"Are we not also trustees of all cultures and faiths? Is the slaughter of innocent men, women and children evidence of power? Is organised, murderous retaliation likely to be a resolution of Hindu-Muslim differences? The secular imagination, he argued, suffers from both Eurocentrism and anthropocentrism. It represents the ideology of those who plunder nature. Both religious politics and secular politics has annihilationist agendas".*

ए.के. सरन का जे.पी.एस. की ही तरह छपा हुआ काम कम है। वे मौखिक परम्परा के प्रतिपादक अधिक हैं। उनकी पुस्तक Traditional thought: toward an axiomatic approach (A book of reminders) छपी है केन्द्रीय उच्च तिब्बत अध्ययन संस्थान सारनाथ से, 1996 में उनके सम्यग् वाक् सीरीज में। केवल सैमधोंग रिनपोचे (तब संस्थान के निदेशक और अब निर्वासित तिब्बती सरकार के अध्यक्ष) और रमेश तिवारी के प्रयासों के कारण यह पुस्तक लिखी गयी। प्रस्तावना काव्य में है और बेहद प्रभावशाली है। उससे स्पष्ट है जे.पी. नायक और रजनी कोठारी की भूमिका जिन्होंने सरन की

सोच को महत्व दिया और जो कि सेक्यूलरवादी यूरोप प्रभावित प्रत्यक्षवादी बुद्विजीवियों द्वारा नकारा गया था। किताब के अंदर प्रथम पृष्ठों में बोद्धिसत्व अवालोकितेश्वर का चित्र है, जो बताता है कि उनके ऊपर बौद्ध दर्शन का प्रभाव था। किताब जापान के कियोको वाटानाबे की मदद से छपी है।

प्रकाशक की टिप्पणी है कि उनका चिन्तन आनंद कुमारस्वामी से प्रेरित है। वे 'परम्परागत' विचार को summa sociologica की तरह प्रस्तुत करते हैं। मानवीय सामाजिक आयोजन के सिद्धांत को परम्परा में देखते है ("In his scheme of things cosmology and ontology have to serve as the bases of sociology")

दलाई लामा भूमिका में लिखते हैं कि प्रगति का अर्थ है लालच, हिंसा, शस्त्र, न्याय, व्यवस्था लेकिन सच्ची आजादी के लिए जरूरी है कि हम परम्परा को परखें, 'परम्परा सबसे व्यापक अर्थ में'। इस सत्य रूप में, परम्परा न प्राचीन है, न नवीन, न आधुनिक है, न आधुनिकता विरोधी। वह शाश्वत है, सार्वभौमिक और sacred है।'' उसके विपरीत आधुनिकता है जिसमें मनुष्य अपनी संतुष्टि, विज्ञान, तकनीकी और सामाजिक engineering के जरिए करता है। सरन 'axiomatic approach' अपनाते हैं परम्परागत चिन्तन की प्रस्तुति में। एक metaphysics की 'perennial philosophy' की ओर इंगित करते हैं। ये जरूर है कि सरन की दृष्टि में 'परम्परा' भी कुछ नयी सी बात बन जाती है, क्योंकि वे 'परम्परा' को पुनर्गठित और पुनः अवधारित करते हैं। सरन की प्रस्तावना प्रकाशमयी है। वे इशारा करते हैं आधुनिकता के भ्रम (illusion) और निश्चितता (certainty) के प्रति जो मानती है कि ज्ञान प्रमाण (evidence) पर आधारित है। उनके अपने काव्य में,

We believe
that
our knowledge
is
theoretic scientific
methodologically
sophisticated
empirical
and
objective. (xxviii)

Scientific Method
remains
blemished
vitiated
for
the dire
choice
between
Truth and Method
remains
unresolvable
inescapable. (xxix)

Indeed
modern science
has to decide
in favour
of Method
leaving
Truth
to its
own devices.

Modern knowledge
is a knowingness
safely, complacently
forgetfully
distanced
from
the radical wonder
of the intimations, reverberations
of
the Absolute
of
the Void.
The region
of
Possibility
embraces
all things
past present and future
here and hereafter
Good and evil
Right and wrong.
आगे सरन लिखते हैं-
Truth is inseparable from Reality
It is independent of acceptance by you or me
or the experts the cognescenti.
Truth is not the daughter of time (xxxi).

Remembrance is of the past
also of the momentaneity of the present.

of the absence of the not yet! xl

Memory at the absolute level coincides with Omniscience. xli

Modernity
announces itself
and proclaims
its task:
to destroy Tradition
and
to usurp
its "time" and space.

Preaching
pan-relativism
Modernity
modernisation
claim
transhistorical
authority
worldwide
expansion.

A radical-dialectical
critique
of
(modern) social "science"
indeed of all modern thought
is a prerequisite
of any
contemporary
exposition
of
Traditional Thought.

The essential principal
contemporaneity
of
Tradition
requires

for its exposition
a radical dialectical
critique
of modernity
Modernisation. xxviii

सरन स्वीकार करते हैं कि उनका अपना विचार स्पष्ट और अस्पष्ट रूप में रामचंद्र गांधी के चिन्तन से गहरे रूप से प्रभावित है। उनकी दृष्टि में वे आज की तारीख में सत्य को खोजने वाले और विश्व के महान् बुद्धिजीवियों में से एक हैं। पीटर मूर की तरफ भी इशारा है और उनकी आधुनिकता की गहरी आलोचना भी है,

Modernity sustains itself on the obsolescence built into it. lxix
Self-grounding Novelty Violence Modernity Synonyms.

सरन के काम में सेक्यूलरवाद और विकासवाद की आलोचना मिलती है, जो प्रगति को देखता है प्रागैतिहासिक काल से लेकर इतिहास के अंत (end of history) तक।

Man lives in the twilight of the Non-manifest

The bond between human thinking and human language is indescribable (12)

The world is a creature
Ever shadowed by the other and the otherwise
The contingent is a moving chain of mutual dependencies
With a postulated Origin
And a postulated End.

The chain of contingencies dialectically suggests the metaphysical identity of Samsara and Nirvana.

Contingency dialectically leads to the idea of the Absolute, the Void (Kha, Sunya)

The highest and deepest metaphysical salvific emancipatory meaning of the universality of contingency is found in the doctrine of Pratitya Samutpada (broadly translated as the doctrine of Dependent Origination or Conditional Co-production); Anekantavad (universal ontic and epistemic and linguistic Infinity; also called Syatvada). 21

Just as precisely as the one between Language and Man

Vaikhari
Madhyama
Pasyanti
Pasyanti is aware of Itself
Para is beyond such self-awareness

or

The self-awareness of Para is known as Pasyanti.

कुछ निष्कर्ष

पूर्व आधुनिक भारत में बौद्धिक उपनिवेशवाद के कई कदमचिह्न मिलते हैं। साथ ही साथ, कहीं कहीं मानसिक स्वराज की चेष्टा भी झलकती है। विचार जगत में जैसाकि हमने तीन दार्शनिकों के विचारों में देखा, उनकी भिन्न कल्पना दृष्टियों में, पद्धतियों में, प्रभावों में। कार्य जगत में भी मानसिक स्वराज के प्रयास हैं, जहां सामाजिक आंदोलनों के जरिए शक्ति और ज्ञान के प्रभुत्व के खिलाफ लड़ाई रची जा रही है।

मानसिक स्वराज और भाषा का सवाल अहम है। देशी भाषाओं में कई बुद्धिजीवियों के प्रयास मिलते हैं। जी.पी. देशपांडे ने आधुनिक मराठी में विनोबा भावे के विचारों में ज्ञान कर्म (प्रवृत्ति) मार्ग का विश्लेषण करने की चेष्टा की है। विनोबा का सवाल है कि मैं हिन्दू रह सकता हूं एक जाति विहीन समाज में (सीएसडीएस सेमीनार 2007)।

मानसिक स्वराज का कोई एक शाश्वत सत्य नहीं हो सकता। हर संस्कृति/सभ्यता/समूह/समाज/व्यक्ति को प्रत्येक पीढ़ी में इसे अपने लिए पुनः निर्धारित करना होगा। स्वराज की पूर्व मान्यता है कि मैं किसी भी बौद्धिक परम्परा से अपने को जोड़ सकूं, किसी भी दिशा में मेरा विवेक उड़ान ले सके इसकी आजादी मुझे हो। एक स्वस्थ बौद्धिक जीवन के लिए जरूरी है कि प्रतिद्वंद्वात्मक और पारस्परिक दृष्टियों और सोच का हम निर्माण करें।

और फिर मानसिक स्वराज तो एक संघर्ष है, वह कभी अंतिम दिशा नहीं निर्धारित कर सकता, क्योंकि जैसाकि गांधी ने कहा मनुष्य सम्पूर्ण सत्य जानने के योग्य ही नहीं है। वह एक स्वयं के साथ संघर्ष और स्व को बदलने की कोशिश (self transformation) है जिसमें हमारी विश्व/प्रकृति/मनुष्य जानवर/संसार के प्रति दृष्टि नैतिक है।